North Asian International Research Journal of Multidisciplinary

CIF IMPACT FACTOR:4.465

ISSN: 2454-2326 Vol. 4, Issue-4 April-2018

Index Copernicus Value 58.12

# भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा

**Kranti Parihar* & Dr. Neeraj Goel****

*Research Scholar, Jiwaji University ,Gwalior
**Research Supervisor

भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा अपनी निर्मित की प्रक्रिया से ही वाद–विवाद की सामना करती रही है। या यूँ कहें वाद–विवाद की प्रक्रिया से ही इसकी निमिति भी सम्भव हो सकी है।

इस वाद–विवाद में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप मार्क्सवादी इतिहासकारों ने किया। उनके हस्तक्षेप की दिशा मूलतः मार्क्स के 1853 ई. में लिखित लेख भारत में ब्रिटिश शासन पर आधारित थी।[1]

उपरोक्त विचारपूर्ण एवं तथ्यपूर्ण लेख में कार्ल मार्क्स ने भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद के अदृश्य अन्तःसंबंधों को स्पष्ट करते हुए मत व्यक्त किया है कि भारत में एक सामाजिक क्रांति आरम्भ करने में इंग्लैण्ड ने अपने अत्यन्त निम्नकोटि के स्वार्थों को साधा है। उन्होनें इस स्वार्थ साधन एवं अत्याचार को कहीं न कहीं क्रांति लाने में इतिहास के एक अवचेतन अस्त्र के रूप में भी देखने का आग्रह किया है। अत्यन्त तार्किक एंव बौद्धिक ढंग से भारतीय राष्ट्रवाद की मार्क्सवादी अवधारणा को विकसित करने वालों की श्रृंखला में विकासमान समय में अनेक विद्वान अपनी भूमिका का निर्वाह करते रहे।[2]

इस संबंध में मार्क्सवादी दृष्टि की सीमाओं को उद्घाटित करते हुए पार्थ चटर्जी ने इस इतिहासधारा को भी राष्ट्रवाद के उदारवादी इतिहास की तरह उपाख्यानात्मक माना है।[3]

किन्तु इस मत पर सर्वसम्मति है कि अपने राजनैतिक मतभेदों के बावजूद मार्क्सवादी इतिहासकारों की एक सम्पूर्ण पीढ़ी ने भारत के 19वीं व 20वीं सदी के बौद्धिक इतिहास को प्रतिक्रियावादी और विकासशील शक्तियों का संघर्ष मान राष्ट्रवाद के नए एवं पूर्ण इतिहास के निर्माण के लिए पथ प्रशस्त किया। इस धारा में मूल्यांकन पुनर्मूल्यांकन, आलोचना प्रत्यालोचना की तीव्र आकांक्षा थी। इस आकांक्षा ने नए तथ्यों का शोधन किया। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में कई बार यह स्पष्ट

हुआ कि जो राष्ट्रीय था, वह सदैव धर्म निरपेक्ष और आधुनिक नहीं था और जो लोकप्रिय तथा लोकतांत्रिक था वह कई बार पारम्परिक और गैर आधुनिक था।[1]

ऐतिहासिक संवाद के क्रम में मार्क्सवादी व्याख्याओं पर कई प्रश्नचिहन लगाए गए। आधार, संस्कृति और तंत्र के सम्बन्धों की प्रकृति की पुनर्समीक्षा का आग्रह किया गया किन्तु ये नए प्रश्न भी मार्क्सवादी ढॉचे के भीतर से ही उद्भुत हुए। उदाहरणार्थ, 19वीं सदी के पुनर्जागरण की मार्क्सवादी अवधारणा की कटु आलोचना करते हुए सुमित सरकार नेय लक्षित किया कि मार्क्सवादी विचारकों ने आधुनिक भारतीय चिन्तन के उदभव को पाश्चात्य आधुनिकतावाद और परम्परावाद के बीच संघर्ष के रूप में दिखाते हुए कई विश्लेष्य जटिलताओं को न समझने की भूल की है। सुमित सरकार के अनुसार राममोहन राय का परम्परा से विच्छेद वस्तुतः बौद्धिक धरातल पर ही न था न कि मूलभूत सामाजिक परिवर्तनों के तल पर अपने आर्थिक चिन्तन में उन्होनें स्वतंत्र व्यापार के प्रचलित तर्क को स्वीकार किया और बंगाल में अंग्रेज व्यापारियों के साथ एक पराश्रित बूज्वा विकास को भी लक्षित किया।[1]

इस संवाद में मुख्य तर्क यह था कि इसके बावजूद कि आधुनिकता के तत्व 19वीं सदी के सांस्कृतिक बौद्धिक आंदोलन में विद्यमान थे ये तब तक कोई अर्थवत्ता ग्रहण नहीं कर सकते जब तक कि वे एक तरफ तत्कालीन सामाजिक आर्थिक रचना और दूसरी तरफ शक्ति के संदर्भों से पहचान नही लिये जाते हैं। इस तर्कपद्धति, दृष्टि एवं पहचान नहीं लिये जाते हैं। इस तर्कपद्धति, दृष्टि एवं पहचान के बाद राजा राममोहन राजा जैसे 19वीं सदी के आधुनिकतावादी प्रणेता की उपलब्धियॉ उच्च हिन्दू मानस और औपनिवेशक ढाँचे में ही संकुचित प्रतीत होती है।

इस प्रकार के विश्लेषण को 19वीं सदी के बांग्ला समाज सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सम्बन्धी अध्ययन में अशोक सेन द्वारा अधिक व्यापक ढंग से विकसित करते हुए भारतीय राष्ट्रवाद के चरणबद्ध पुनर्जागरण का इतिहास रचने का सार्थक प्रयास किया गया।[1] औपनिवेशक काल के बौद्धिक इतिहास पर प्रो. के.एन. पनिक्कर द्वारा अत्यन्त तन्मय होकर किए गये अध्ययनों ने पुनर्जागरण की इतिहास रचना को सम्भ्रान्तता प्रदान की है।[2]

भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद की अवधारणा के विकास में प्रो. विपनचन्द्र के शोधपरक अध्ययनों के महत्व को स्वीकार किया जाना चाहिए और भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास को एक अन्वित प्रदान करने में प्रो. आर.एल. शुक्ल की भूमिका को भी रेखांकित करने की आवश्यकता है।[1]

भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास पर वाद विवाद में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप (सब आल्टर्न) अध्ययनों से जुड़े इतिहासकारों ने किया है। प्रो. रणजीत गुहा भारत में राष्ट्रवाद का इतिहास लेखन एक लम्बे

अंतराल से अभिजातवाद के प्रभाव तले रहा है। यह अभिजातवाद दो प्रकारों से उपस्थित रहा है औपनिवेशक अभिजातवाद एवं तूज्वी राष्ट्रवादी अभिजातवाद ये दोनों भारत में उभरे किन्तु नव उपनिवेशवादी एवं नवराष्ट्रवादी वैचारिक बहसों के रूप में भारत और ब्रिटेन में अब भी जीवित है। इसके मुख्य प्रणेता ब्रिटिश लेखक और वहॉ के संस्थान रहे हैं। लेकिन इनके पीछे चलने वाले भारत तथा अन्य देशों में भी है। राष्ट्रवादी एवं नव राष्ट्रवादी इतिहास लेखन मुख्य तथा एक भारतीय चलन है, जिसके अनुरूप काम करने वाले उदारवादी लेखक ब्रिटेन में और अन्यत्र भी हैं।[2] इस विवाद को और तीव्र करते हुए प्रो. रणजीत गुहा कहते हैं – अभिजातवाद के इन दोनों स्वरूपों की यह पक्षपातपूर्ण धारणा रही है कि भारत का एक राष्ट्र के रूप में निर्माण और इसकी राष्ट्रीय चेतना का विकास अत्याधिक रूप से और पूर्णरूपेण अभिजात उपलब्धियॉ रही हैं। जहॉ इसका श्रेय उपनिवेशवादी एवं नव उपनिवेशवादी इतिहास लेखकों के यहॉ ब्रिटिश शासकों प्रशासकों, नीतियों संस्थानों एवं संस्कृति को हैं, वहीं राष्ट्रवादी एवं नव राष्ट्रवादी इतिहास लेखन में यह श्रेय अभिजात चरित्रों संस्थानों उनके क्रियाकलापों तथा विचारों को है।[1]

वे समकालीन इतिहास लेखन के मूल ढॉचे पर आक्रमण करते हुए कहते हैं कि इतिहास लेखन के प्रथम दो स्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद को प्राथमिक रूप से उत्प्रेरित एवं प्रभाव ग्रहण की प्रक्रिया का फलन मानते हैं। संकीर्ण व्यवहारवादी दृष्टिकोण पर आधारित उनकी दृष्टि राष्ट्रवाद को उपनिवेशवादी संस्थानों अवसरों और संस्थानों के साथ भारतीय अभिजात वर्ग की वैचारिक प्रतिक्रियाओं और गतिविधियों के कुल योग के रूप में देखती है। इस इतिहास लेखन के कई स्वरूप हैं किंतु एक केन्द्रीय वस्तु है जो इन सबके बीच सामान्यता पाई जाती है। वह यह है कि भारतीय राष्ट्रवाद मुख्य रूप से सीखने की या सुसंस्कृत होने की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें भारतीय अभिजन शासक अंग्रेजों द्वारा नियंत्रित विभिन्न संस्थानों तंत्रों और सांस्कृतिक जटिलताओं को समझने और उससे संवाद स्थापित करने की कोशिश करता है। वस्तुतः भारतीय अभिजन को इस दिशा में प्रेरित करने वाली शक्ति कोई उच्च्च वैचारिक आदर्श न होकर औपनिवेशिक शासन द्वारा रची गई और उससे अभिन्न उसके ऐश्वर्य धन, शक्ति एवं यश में साझेदारी का लोभ था।[1]

प्रो. रणजीत गुहा के अनुसार दूसरे प्रकार के राष्ट्रवाद कई रूप दृष्टिगत हो सकते हैं। परन्तु उन सबमें यह सामान्य मान्यता रही है कि भारतीय राष्ट्रवाद यहॉ के कुलीन वर्ग के आचारों एवं सदगुणों की ऐसी अभिव्यक्ति रहा है जो उनके त्याग और परोपकार के कारण उन्हें अंग्रेजों का निरा साझेदार ही न बनाकर लोकहित में काम करने वाली स्वतंत्र इकाई में भी स्थापित करता है। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास यहॉ के अभिजात वर्ग की आध्यात्मिक जीवनी के रूप में लिखा गया है।[1]

इन तीव्र एवं विचारपूर्ण आलोचनाओं के पश्चात प्रो. गुहा इस शोध पत्र में अभिजातवादी इतिहास लेखन के सकारात्मक पक्ष की भी व्याख्या करते हैं उनकी दृष्टि में यह उपनिवेशवादी शासन की संरचना, वर्ग, संघर्ष, विभिन्न ऐतिहासिक घटकों की भूमिका, वैचारिक विकास और दो तरह के अभिजात की आन्तरिक विडम्बना को भी दर्शाता है। अन्ततः यह इतिहास लेखन के वैचारिक चरित्र को समझने में हमारी मदद करता है।[2]

विवादों की राजनीति से थोड़ा हटकर अगर देखा जाए तो प्रो. गुहा के तर्कों में वहाॅ शक्ति है जहाॅ वे कहते हैं कि अभिजातवादी इतिहास लेखन की दरिद्रता राष्ट्रीयता के निर्माण में विराट जनमानस की स्वतः स्फूर्त और स्वप्रेरित हिस्सेदारी को न समझ पाना है या जहां वे भारतीय अभिजात वर्गीय राजनीतिक के समानान्तर ही चल रही निम्न जातीय वर्गों और समूहों की अत्यन्त प्रभावशाली राजनीति को समझने का आग्रह करते हैं वास्तव में संगठन सम्बद्धता के अध्ययन से जिस अभिजात राजनीति के एकरैखिकता के सिद्धांत का विकास हुआ है उससे निम्न वर्गों की राजनीति के क्षैतिज स्वरूप को नहीं समझा जा सकता।[1]

इन समस्त सकारात्मक तथ्यों के बावजूद प्रो. रणजीत गुहा ने औपनिवेशक अभिजात एवं बुर्जुआ राष्ट्रीय अभिजात को एक ही साथ रखने की चेष्टा की है। उनके इस कृत्य को इतिहास के बौद्धिकों के मध्य अतिवादी व्याख्या की संज्ञा दी गई है।[2]

वस्तुतः भारत में राष्ट्रवाद का इतिहास रचने के अनेक प्रयासों और प्रयोगों के बाद भी अभी तक हमें राष्ट्रवाद का समतल छिछला एवं फॉर्मूलाबद्ध रूप ही प्राप्त हुआ है। भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास की व्यापकता एवं गहराई प्राप्त अभी हमारे समक्ष चुनौती है। अब तक भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा का अध्ययन हमारे समक्ष एक गंभीर चुनौती है। अभी तक वास्तव में अभिजात इतिहास लेखन की अपनी सीमाओं के कारण भारतीय राष्ट्रवाद की अभिजात धारा ही मुख्य रूप से ज्ञात के क्षेत्र में प्रभावी है। भारतीय राष्ट्रवाद की लोक धारा को समझना भी हमारे लिए एक इतिहास प्रदत्त जिम्मेदारी है।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कार्ल मार्क्स, द ब्रिटिश रूल इन इंडिया, कार्ल मार्क्स और एक सीगल्म द फस्ट इण्डियन वार ऑफ इडिपेन्डेंस 1857–1859 (यास्को, फॉरेन लैगवेजेज पब्लिशिंग हाउस 1959, पृ. 20)

2. आर.पी. दत्त इण्डिया टुडे (बाम्बे, जी.वी.एच. 1949)

3. पार्थ चटर्जी, नेशनलिस्ट थॉट एण्ड कॉलोनिमल वर्ल्ड : ए छिराइवेटिव डिरसोस (यू. एन. यू. 1986) पृ. 10–17

4. पार्थ चटर्जी, नेशनलिस्ट थॉट एण्ड कॉलोमिनल वर्ल्ड – 1986 पृ. 20

5. सुमित सरकार, राजा राममोहन राय एण्ड द ब्रेक विद द पास्ट (वी.सी. जोशी) द्वारा सम्पादित पुस्तक राममोहन राय एण्ड दि प्रोसेस ऑफ मॉडनाइजेशन इन इण्डिया दिल्ली विकास 1975

6. अशोक सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एण्ड हिज इब्यूसिव माइलस्टोनान कलकत्ता (रिद्धि) इण्डिया 1977

7. के.एन. पनिक्कर का शोधपत्र कल्चर एण्ड इण्डियालॉजी कन्ट्राडिक्सन इन इन्टेलेक्युअल ट्रांस्कोमेशन ऑफ कॉलोनियल सोसायटी इन इंडिया इ.पी.डब्लू. 5 दिसंबर 1987 में प्रकाशित

8. प्रो. आर.एल. शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली 1992

9. रणजीत गुहा सबाल्टर्न स्टडीज ताल्युम ओ.यू.पी. की भूमिका में।